दिनांक-23.4.20

स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा - भाग 3 के विद्यार्थियों हेतु
विषय - भाषा विज्ञान
पाठ - भाषा की परिभाषा एवं उसकी विशेषताएँ का शेष भाग

छात्र-छात्राओं !

जैसा कि कल के पाठ में विचार किया गया था — भाषा की परिभाषा अपनी व्यापकता के साथ भिन्न-भिन्न प्राणियों, स्थितियों के अनुकूल बनती-बिगड़ती रहती है। भोला नाथ तिवारी जी की परिभाषा में 'यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की जिस संरचनात्मक व्यवस्था' की बात की गई है वह मानव से जुड़ी हुई है। यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों से तात्पर्य मानी हुई ध्वनि प्रतीकों से है। यादृच्छिक का अर्थ है - 'जैसी इच्छा हो'। अर्थात् हमारी भाषा में व्यक्त भावों एवं विचारों का सम्बन्ध किसी शब्द के सहज-स्वाभाविक संबंध से नहीं है, अपितु जैसा हम चाहते हैं या समाज चाहता है वैसा ही संबंध या अर्थ होता है। यह तर्कपूर्ण भी नहीं होता है। यदि सहज सम्बन्ध होता तो हरेक भाषा में किसी शब्द को एक ही तरह से लिखा जाता। जैसे हिंदी में 'पानी' के लिए अंग्रेजी में 'वाटर' या फारसी में 'आब' नहीं होता। स्पष्ट है यादृच्छिक शब्द ध्वनि प्रतीकों का रूप अपनी इच्छानुसार ग्रहण ~~किये गये~~ समाज के अनुसार ऐसा हुआ है। यही बात व्याकरण के स्तर पर रूप-रचना और वाक्य रचना में देखने को मिलती है। जैसे अंग्रेजी में कर्त्ता-कारक के लिए किसी कारक चिन्ह का प्रयोग नहीं होता है- अंग्रेजी में 'Mohan Killed Kans'- और इसी को हिन्दी में 'मोहन ने कंस को मारा' जैसा प्रयोग किया जाता है। वाक्य रचना में भी हिन्दी में 'कर्त्ता-कर्म-क्रिया' होता है तो अंग्रेजी में 'कर्त्ता-क्रिया-कर्म' होता है। दूसरी अन्य भाषाओं में भी इसी तरह की भिन्नता के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ इस तरह की 'रूप-रचना' और 'वाक्य-रचना' के पीछे कोई तर्क की कसौटी नहीं है।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि इस 'यादृच्छिकता' को विभिन्न भाषा-भाषी अपनी विशेषता या वैशिष्ट्

से भी जोड़ते हैं। जैसे 'Mohan Killa Road' को लेकर अंग्रेजी वाले कहते हैं — 'मेरी भाषा कम शब्दों के प्रयोग से सुगठित है।' इसी तरह हिन्दी वाले कहते हैं — 'अंग्रेजी में जैसा उच्चारण किया जाता है वैसा लिखा नहीं जाता।' आदि कई तरह से विभिन्न भाषा वाले लोग अपनी विशिष्टता का बखान करते हैं।

सृजनात्मकता :- सृजनात्मकता भाषा का वैसा गुण है जो मानवीय भाषा की खास विशेषता का गुण है। यह दीगर बात है कि हम दूसरे जीवों, पशु-पक्षियों की भाषा पूरी तरह समझ नहीं पाते। तिवारी जी की भाषा की परिभाषा में जो 'संरचनात्मक व्यवस्था' है वही गतिशीलता के कारण सृजनात्मक भाषा में तब्दील हो जाता है। यह भाषा की खास विशेषता है। भाषा में शब्द और रूप तो सीमित होते हैं, पर उन्हीं शब्दों के रूपों को अपनी इच्छानुसार थोड़ा परिवर्तन करके हमने नये-नये शब्दों का सृजन भी गढ़ा है और उसके नये अर्थ भी दिये हैं। जैसे - मैं, तुम, वह, बुलवाना जैसे चार शब्दों से कई वाक्यों का सृजन कर देते हैं — 'मैंने उसे तुमसे बुलवाया' 'मैंने तुम्हें उससे बुलवाया', 'उसने तुम्हें मुझसे बुलवाया' आदि। कवि-लेखक अपनी क्षमता बताते हुए नये शब्द गढ़ भी लेते हैं — जैसे अज्ञेय ने कुमुदनी की कलि के लिए अपनी 'कलगी बाजरे की' कविता में 'कुईं' शब्द का पहली बार प्रयोग किया। निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यास 'समर शेष है' में 'और मैं निःशब्द था' जैसे वाक्य में गहरे विचारों में डूब जाने का अर्थ द्योतित करते हैं। ऐसी सृजनात्मकता अन्य प्राणियों की भाषा में दुर्लभ है।

भाषा की विशेषता में अनुकरण ग्राह्यता, परिवर्तनशीलता, विभिन्नता (स्वच्छता), द्वैतता, अंतरणता, मौखिकता, ~~[illegible]~~ अन्यता, असहजवृत्तिकता होती है। संक्षेप में इनपर भी विचार अपेक्षित है।

अनुकरण ग्राह्यता :— मनुष्य भाषा समाज से सीखता क्योंकि उसमें अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। नन्हा शिशु माँ से सीखता है। यह सीखना पहले अनुकरण द्वारा होता है जहाँ वह तुतलाता भी है। इसके विपरीत अन्य जीव-जन्तुओं के बच्चे जन्मजात अपनी भाषा या बोली सीखकर आते हैं। कह सकते हैं कि मानव की भाषा आनुवंशिक नहीं होती। वह अनुकरण ही करता है।

परिवर्तनशीलता : — मानवों की भाषा में परिवर्तनशीलता स्थान विशेष, काल विशेष के कारण ~~परिवर्तनशील~~ आ जाती है। जैसे — संस्कृत काल में 'कर्म' शब्द का रूप बदलकर प्राकृत-काल में 'कम्म' हो जाता है तो वही कर्म आधुनिक काल में 'काम' का रूप ले लेता है। यह परिवर्तनशीलता अन्य जीवों की भाषा में नहीं है। इसका कारण मनुष्य का अनुकरणशील होने में है। जब जैसी स्थिति होती है वह ~~उसे~~ अनुकरण कर लेता है अपना लेता है।

विविक्तता : — मानवीय भाषा कई इकाइयों में बँधा हुआ होता है, जैसे वाक्य कई शब्दों से बना हुआ होता है तो शब्द कई ध्वनियों से बना है। इस कारण अपनी बात टुकड़ों में भी यदि मनुष्य अपने साथी से कहता है तो वह स्पष्ट तौर पर उसका साथी ग्रहण कर लेता है। यह लक्षण केवल मनुष्य की भाषा में ही होता है।

द्वैतता : — हमारी भाषा में शब्द सार्थक भी होते हैं और निरर्थक भी। इन्हीं दोनों स्तरों को द्वैतता कहा जाता है। इन दोनों इकाइयों में सार्थक इकाइयों को 'रूपिम' (शब्द, धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, कारक चिह्न आदि) कहते हैं। दूसरे स्तर की इकाइयाँ ध्वनियों के रूप में अपना कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं रखती पर सभी ध्वनियाँ मिलकर अर्थ देती हैं। जैसे 'बंदर' में ब + अ + न् + द + अ + र यह छः ध्वनियाँ स्वतंत्र रूप में निरर्थक होते हुए भी मिलकर सार्थक शब्द एक विशेष प्रकार के पशु का अर्थ द्योतित करती हैं। यही द्वैतता है।

अन्तरणता : — मनुष्यों की भाषा में अन्तरणता काल विशेष के आधार पर स्पष्टतः देखी जाती है। हम भूत, वर्तमान और भविष्य की बात भी अपनी भाषा में करते हैं जबकि अन्य जीव ऐसा नहीं करते।

मौखिकता-श्रव्यता : — हम मुँह से बोलते हैं और कान से सुनते हैं। यह निश्चित है। पढ़ने-लिखने की स्थिति भी इसी पर आधारित है। जबकि मधुमक्खियाँ या कुछ अन्य पक्षी नृत्य के द्वारा भी अपनी बात कहते हैं।

असहज वृत्तिकता : — मनुष्य सहज रूप में अपनी भाषा निःसृत नहीं करते जैसे अन्य जीव करते हैं। मनुष्य का जीवन की सहजात वृत्तियों से उसकी भाषा का कोई संबंध नहीं होता।

उपर्युक्त सभी लक्षणों के कारण मनुष्यों की भाषा अन्य जीवों की भाषा से अलग हो जाती है। यही मानवीय भाषा की विशेषताएँ हैं।

सोमा शर्मा हिन्दी विभाग
एस•एस• कॉलेज, जहानाबाद।